MAA OMWATI DEGREE COLLEGE

HASSANPUR

NOTES

CLASS:- BA 1ST SEM

SUBJECT: ENVIRONMENTAL SCIENCE (VAC)

E.V.S

Page :
Date :

Chapter- 1

पर्यावरण अध्ययन : एक प्रस्तावना

पर्यावरण ⇒

पर्यावरण व मानव का संबंध अति प्राचीन है। मानव भी अन्य जीवों की भांति प्रकृति की देन है, परन्तु मानव और जीवों में अंतर यह है कि मानव में अपने पर्यावरण के साथ अनुकूल तथा प्रतिकूल पर्यावरण के साथ निरंतर संघर्ष करने की क्षमता है, जो जीवों में नहीं है। विल्सन डी० वालेस ने इस विषय में कहा है कि " पर्यावरण वह हिंडोला है जिसमें मनुष्य अपनी बुद्धिमत्ता से स्वयं के उद्देश्यों को पूर्ण कर अपने भाग्य पर स्वामित्व स्थापित करता है।

पर्यावरण का अर्थ :

पर्यावरण शब्द को अंग्रेजी में 'Envirorment' कहते हैं। अंग्रेजी के शब्द Envirorment का विन्यास करने से स्पष्ट है कि इसमें भी दो शब्द Environ और ment है, जिनमें से Environ का अर्थ 'घेरना' और ment का अर्थ 'चतुर्दिश' अर्थात् चारों ओर से है। वास्तव में Envirorment शब्द Envelop का पर्याय है। इससे स्पष्ट है कि मनुष्य को जो स्व सामूहिक रूप से चारों ओर से घेरे हुए है, उसको पर्यावरण कहते हैं।

1. सी० सी० पार्क के अनुसार " मनुष्य एक विशेष स्थान पर विशेष समय पर जिन सम्पूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ है, उसे पर्यावरण कहते हैं।

Page:
Date:

पर्यावरण के मुख्य घटक

पर्यावरण के मुख्यतः चार घटक हैं:-

- भौतिक घटक :-> इनमें पर्यावरण के भौतिक एवं रासायनिक तत्वों को सम्मिलित किया जाता, जैसे - जल, वायु, खनिज, मिट्टी, अग्नि, चट्टान तथा भौगोलिक स्थिति आदि।
- जैविक तत्व :-> इनमें सूक्ष्म तथा बड़े सभी तरह जीवित तत्व आते हैं, जैसे - काई, वायरस, पेड़-पौधे, सूक्ष्म जीव, पशु व मनुष्य आदि।
- सौर ऊर्जा :-> सौर ऊर्जा का योगदान पर्यावरण में बहुत ज्यादा है। सौर ऊर्जा से वनस्पति में क्लोरोफिल के रूप में भोजन बनता है व वनस्पति ही जीवों के भोजन का स्रोत बनती है।
- सांस्कृतिक घटक :-> इनमें सांस्कृतिक गतिविधियाँ, आर्थिक गतिविधियाँ, राजनैतिक गतिविधियाँ आती हैं, जो पर्यावरण को प्रभावित करता है।

पर्यावरण अध्ययन का क्षेत्र

पर्यावरण का विषय क्षेत्र विस्तृत है, क्योंकि इसमें एक जीवमण्डलीय पारितन्त्र अध्ययन किया जाता है। स्थल, जल, वायु के सम्मिलन से निर्मित पृथ्वी के चारों तरफ व्याप्त मोटी परत जो सभी प्रकार के जीवों का पोषण करती है, जीवमण्डल कहलाती है।

1. पर्यावरण एवं मानव संबंधों का अध्ययन :- इसके अंतर्गत पर्यावरण के कई पक्षों को शामिल किया जाता है - पर्यावरण की परिभाषा, संगठन, मनुष्य तथा प्रकृति

Page :
Date :

पर्यावरण एवं समाज तथा पारिस्थितिकी व मानव के एवं पर्यावरणीय प्रक्रमों के मध्य संबंध आदि।

2\. पर्यावरण ह्रास, प्रदूषण एवं परितन्त्र का अध्ययन :
इसमें परितन्त्र के संघटकों एवं इसकी संरचना, ऊर्जा का प्रभाव, पदार्थों की संरचना, परितंत्र की उत्पादकता, पौधों व जन्तुओं का क्षेत्रीय व प्रादेशिक वितरण।
पर्यावरण का ह्रास, पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक एवं मानवीय समस्याओं व इनको दूर करने के उपायों को शामिल किया जाता है।

3\. पर्यावरण प्रबन्धन :-
प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों का दोहन बड़े पैमाने पर किया जा रहा है, इसका दुष्प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है। प्रकृति के बीच संतुलन बनाये रखने हेतु संसाधनों का वर्गीकरण, संसाधनों का सर्वेक्षण, उनका मूल्यांकन तथा संरक्षण एवं परिरक्षण एवं पर्यावरण पर प्रदूषण का प्रभाव इत्यादि को ध्यान में रखते हुए संसाधनों का प्रबन्धन आवश्यक है।

पर्यावरण अध्ययन का महत्व
पर्यावरण तथा मनुष्य के बीच गहरा संबंध है। इन दोनों को अलग करना बहुत ही कठिन है। अतः मनुष्य को पर्यावरण के विषय में उचित ज्ञान प्रदान करने हेतु पर्यावरण शिक्षा अति आवश्यक है।
पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज सबसे बड़ी समस्या बन गई है। पत्रिकाओं, अखबारों, टेलीविजन के माध्यम से पर्यावरण उन्नयन

के संबंध में जानकारी दी जा रही है।
पर्यावरण ने पृथ्वी को जीवित जगत का गौरव प्रदान किया है, सौर परिवार में केवल पृथ्वी पर पौधों एवं प्राणियों के विकास के लिए अनुकूल पर्यावरण उपलब्ध है।

3. मानव सहित सभी जीव पर्यावरण की देन है। मानव धरातल की सर्वोत्तम रचना है, जिसने पर्यावरण के रहस्यों को जानने में महारथ हासिल की है। मानव की सभी क्रियाओं तथा आधारभूत आवश्यकताओं, प्रमुख उद्यम तथा सामाजिक आवश्यकताओं का प्रत्यक्ष संबंध पर्यावरण से होता है।

4. पर्यावरण पृथ्वी के प्राकृतिक तत्वों का क्रमबद्ध अध्ययन करता है, क्योंकि यह पृथ्वी की भौतिक रचना से लेकर स्थलाकृति, वायुमण्डल, मिट्टी, प्राकृतिक वनस्पतियों, जीव जंतु आदि का शृंखलाबद्ध अध्ययन करता है।

5. पर्यावरण में मुख्यतः स्थल, जल, वायु तथा जीवमण्डल का अध्ययन किया जाता है।

6. पर्यावरण एवं मानव के अन्तर्संबंधों का अध्ययन एवं उसके प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

7. आज के युग में पर्यावरण अध्ययन का महत्व इसलिए भी बढ़ गया है, क्योंकि पर्यावरण ह्रास, प्रदूषण में बढ़ोतरी ने लोगों को इसके अध्ययन के लिए बाध्य किया है।

8. व्यक्ति के उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने के लिए व उसको और बेहतर बनाने के लिए पर्यावरण शिक्षा का ज्ञान देना अति आवश्यक है।

9. पर्यावरण से संबंधित समस्याओं को सुलझाने के लिए व्यावहारिक कौशलों के विकास की आवश्यकता होती है, इसके लिए पर्यावरण शिक्षा लाभप्रद होती है।

10. राष्ट्रीय एकता, भाईचारे, आपसी प्रेम, सहयोग, सहनशीलता, देशप्रेम तथा विश्व बन्धुत्व की भावना के विकास हेतु पर्यावरण शिक्षा बहुत सहायक है।

पर्यावरणीय शिक्षा के उद्देश्य एवं क्षेत्र

शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है। शिक्षा के उद्देश्य समय-समय पर समाज, राष्ट्र तथा राजनीति के अनुसार बदलते रहते हैं। कुछ लोग शैक्षिक उद्देश्यों को संकीर्ण रूप में लेते हैं। इनके अनुसार पाठ्यक्रम पढ़ाना ही शैक्षिक उद्देश्य की पूर्ति कहलाता है। शिक्षा का उद्देश्य केवल निर्धारित पाठ्यक्रम को पढ़ा देना ही नहीं है, अपितु शिक्षा का उद्देश्य छात्र के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। छात्र के व्यवहार के रूप का निर्धारण समाज के द्वारा होता है। इस प्रकार शैक्षिक उद्देश्यों से हमारा आशय छात्रों के व्यवहार में पूर्व निर्धारित परिवर्तनों से है। परिवर्तित व्यवहारों से तात्पर्य छात्रों के चिंतन-मनन, अनुभव करने तथा कार्य करने की विधियों में आवश्यक परिवर्तन करने से है। छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन उनके ज्ञान, कौशल, रुचि और अभियोग्यताओं में परिवर्तन में हो सकते हैं

उद्देश्यों के निर्धारण के समय निम्न बातें ध्यान में रखना आवश्यक है-

1. उद्देश्य समुदाय की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले हो।
2. उद्देश्य प्राप्यशील होने चाहिए।
3. उद्देश्य सामाजिक मान्यताओं के अनुरूप होने चाहिए।
4. उद्देश्य व्यावहारिक होने चाहिए।
5. उद्देश्य छात्रों की आयु के अनुरूप होने चाहिए।

पर्यावरणीय शिक्षा एक नवीन विषय है। अभी पर्यावरण के प्रति सामाजिक चेतना का पूर्णतः विकास नहीं हो पाया है। इसी कारण अभी तक पर्यावरणीय शिक्षा के लिए समाज द्वारा कोई मांग प्रस्तुत नहीं की गई है।

★ पर्यावरण अध्ययन में जन चेतना

पर्यावरण के प्रति जन चेतना की आवश्यकता इसलिए बढ़ गई है क्योंकि पर्यावरण एवं मानव में गहरा संबंध है। मनुष्य पर्यावरण के साये में जन्म लेता है, पलता है एवं विकसित होता है। मनुष्य पर्यावरण के तत्वों से ही परिचित होता है, क्योंकि मनुष्य की आर्थिक क्रियायें पर्यावरण के द्वारा प्रभावित होती है।

औद्योगिकीकरण, शहरीकरण ने प्राकृतिक तथ्यों को इतना नुकसान पहुंचाया है कि पर्यावरण लोगों के रहने लायक नहीं रहा। अतः पर्यावरण अवनयन को रोकने हेतु अध्ययन की आवश्यकता है। इसके लिए सामाजिक व्यवस्था एवं धार्मिक स्वरूप व्यापक एवं सशक्त माध्यम है। हमारी जीवन शैली का आधार प्राकृतिक घटक है।

पर्यावरण संबंध में जन चेतना मानव को प्रकृति के नजदीक ले जाती है। पर्यावरण से नजदीकियां मानवीय गुणों को जन्म देती है। पर्यावरण के संबंध में जन चेतना का बोध उस सामाजिक जागरूकता को कहते हैं जो मनुष्य ने प्रकृति प्रेम की प्रवृत्ति को जगाकर अगली पीढ़ी हेतु सुरक्षित रखता है। जैसे → तुलसी, पीपल आदि। पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने हेतु जन चेतना आज के युग की मांग है। जन चेतना को बढ़ावा देने हेतु गोष्ठी, नाटक, रेडियो, दूरदर्शन, पत्र-पत्रिका, अखबारों से भी उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1995 को पर्यावरण चेतना का वर्ष घोषित किया था।

1. पर्यावरण एवं मनुष्यों की पारस्परिक निर्भरता को समझना।
2. सामाजिक - सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकास हेतु सामूहिक रूप में क्रियाकलापों को शुरू करना।

3. जनचेतना के माध्यम से पर्यावरण के संबंध में जानकारी देना।

4. प्राकृतिक तत्वों का दोहन वैज्ञानिक विधि से करने का सुझाव।

5. भारत के संदर्भ में जनचेतना को देखा जाए तो चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओ आन्दोलन, टिहरी बांध परियोजना आन्दोलन, अरावली बचाओ आन्दोलन, आदि प्रमुख जन आन्दोलन है। दिल्ली जल बोर्ड एवं भागीदारी संस्था ने मिलकर वर्षा के जल के जल के संरक्षण पर अभियान चलाया है।

पर्यावरण संबंधी जनचेतना को जागृत करने के कुछ उपाय

पर्यावरण जनचेतना जागृत करने के भिन्न देशों, दशाओं तथा, आयुवर्ग तथा व्यक्ति के सामाजिक आर्थिक स्तर के अनुसार तरीके भी भिन्न-भिन्न है-

1. टी.वी. जन संचार का सबसे शक्तिशाली माध्यम है। टी.वी. पर कार्यक्रमों, फिल्मों, विज्ञापनों, चर्चाओं, नाटकों तथा लोकगीत, संगीत के माध्यम से पर्यावरण की बातें समझायी जा सकती है।

2. आकाशवाणी, समाचार-पत्र, पत्रिकाओं, पोस्टरों व होर्डिंग्स इत्यादि से भी पर्यावरण के प्रभावशाली तथ्यों को उभारा जा सकता है।

Page :
Date :

3. पर्यावरण दिवसों, रैलियों, कैम्पों, नुक्कड़-नाटकों, कवि सम्मेलनों, कार्यशालाओं, विचार-गोष्ठियों, सेमिनारों, प्रश्नोत्तरियों तथा प्रतियोगिताओं के माध्यम से जन सामान्य तक जन चेतना पहुँचाई जा सकती है।

4. स्कूल, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों की प्रत्येक कक्षा में पर्यावरण अध्ययन को सुरुचिपूर्ण ढंग से पाठ्यक्रम में शामिल करने से जागरूकता का आधार विस्तृत होगा।

5. देश भर में फैले धर्मगुरु, कथावाचक, भूपनी स्वामी अपने प्रवचनों के कार्यक्रमों में किसी न किसी तरीके से पर्यावरण संरक्षण के मुद्दे को प्रस्तुत करने में मदद कर सकते है।

Date :

UNIT = 2nd

Chapter - 2 प्राकृतिक संसाधन

मानव जीवन जिन आधारभूत साधनों पर आधारित हैं और जिनसे उसकी भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, वे सभी संसाधन कहलाते हैं, क्योंकि यह सभी प्रकृति से विरासत में मिले हैं और पर्यावरण के मुख्य घटक हैं, अतः इन्हें प्राकृतिक संसाधन कहते हैं।

मुख्य प्राकृतिक साधनों में सौर ऊर्जा, वायु, जल, भूमि, वनस्पति, प्रकाश, पृथ्वी का ताप, जीवाश्म ईंधन, खनिज, जंतु व सूक्ष्म जीव आदि सम्मिलित हैं। निःसंदेह ये सभी आवश्यक होते हैं और इनकी अधिक या कम उपलब्धता, इनकी निरापदता, प्रदूषणता और इनकी उपयोगिताएं मानव के सुख-दुख विलासिता और अभावों की स्थितियों से जुड़ी हैं। इसी से कुछ देश अधिक सम्पन्न और कुछ अभावग्रस्त होने में विभाजित कर दिये जाते हैं।

हमारे प्राकृतिक पर्यावरण का कोई भी अंश जैसे - भूमि, जल, वायु, खनिज, वन, चरागाह, वन्य जीव, मछली और यहां तक कि मनुष्य आबादी जिससे मनुष्य का कल्याण होता हो, प्राकृतिक संसाधन कहलाता है।

Page :
Date :

प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण

प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण विभिन्न आधारों पर अलग-अलग किया गया है, जिनसे उनके बारे में और अधिक विस्तृत रूप से जाना जा सके, लेकिन इनमें से दो प्रमुख वर्गीकरण को हम यहां दे रहे हैं-

प्रथम वर्गीकरण (First classification):

1. जैविक: इनमें वे सभी संसाधन सम्मिलित हैं जिनमें जीवन होता है, जैसे- पेड़-पौधे, वनस्पति, पशु-पक्षी, जीवाणु, मछली तथा अन्य जलीय जीव।

2. अजैविक: इन संसाधनों में मिट्टी, जल, वायु, ऊर्जा, प्रकाश और खनिज आते हैं। तेल, कोयला, नैचुरल गैस, पत्थर, जलवायु को भी अजैविक संसाधनों में किया जाता है।

★ द्वितीय वर्गीकरण:

1. उपलब्धता
2. समाप्त होने वाले
3. पुनः जीवित होने वाले
4. पुनः जीवित नहीं होने वाले तथा
5. फिर से पुनः जीवित हो सकने वाले संसाधनों में विभाजित करने का प्रयास करते हैं।

प्राकृतिक संसाधन

समाप्त न होने वाले
सौर, आणविक, वायु, जल, प्रकाश, ताप, जलवायु, चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण

समाप्त होने वाले : वन, वन्य, जीव, मिट्टी, पशु-पक्षी, मछली, खनि, तेल, कोयला, अन्य ईंधन

बचाये रख सकने वाले

पूर्ण समाप्त होने वाले

पुनः जीवित होने वाले (Renewable)
वन, जीव-जन्तु, पौधे

देरी से जीवित होने वाले (Late renewable)
मिट्टी

पुनः जीवित न हो (Non-re...)
खनिज, जीवा... ईंधन

अन्य वर्गीकरण

नवीकरणीय संसाधन
- सौर ऊर्जा
- स्नांरन
- जल
- पेड़-पौधे व मिट्टी

अनवीकरणीय संसाधन
- जीवाश्म ईंधन व तेल
- कोयला

इन सभी संसाधनों के विषय में निम्नलिखित तथ्य हमारे समझ आते हैं -

Page :
Date :

1. नवीकरणीय संसाधन →
नवीकरणीय संसाधन वह होते हैं जोकि निरंतर उपलब्ध होते रहते हैं, जैसे- सूर्य का प्रकाश, हवा, सांस लेना तथा जल आदि।

2. अनवीकरणीय संसाधन →
यह वह संसाधन होते हैं जो एक ही उपयोग के पश्चात नष्ट हो जाते हैं अथवा इन्हें वापिस लाने में लम्बा समय लगता है, जैसे - खनिज पदार्थ व जीवाश्म आदि।

∴ प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण
प्राकृतिक संसाधन मानव जगत के लिए मूल आधार हैं। अतः इनका संरक्षण कितना समीचीन और आवश्यक है, यह बताने की बात नहीं है, लेकिन वर्तमान में उनका जिस तरह उपयोग हो रहा है। उससे भविष्य की पीढ़ियों को शेष क्या रह पायेगा ? वह आज विचारने का प्रश्न है। क्योंकि संसाधनों के संरक्षण के संदर्भ में निम्न उद्देश्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं-

↓ , खनिज, तांबा

1. संसाधनों को आवश्यकतानुसार ही सीमित उपयोग किया जाए, जिससे वे अधिक दिनों तक रह सकें।
2. उन्हें दूषित होने से बचाया जाए, जिससे वह मनुष्य के खराब स्वास्थ्य का कारण न बनें।

3. मूलभूत आधार प्राकृतिक संसाधनों को आय का स्त्रोत न बनाया जाए।

यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण केवल उसके उपयोग हेतु उपलब्धता के लिए ही नहीं है, बल्कि विश्व में पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार लाने और उसे अनमोल खजाने के शाश्वत सत्य के साथ संरक्षित रखने के लिए भी है।

★ प्राकृतिक संसाधनों के नष्ट होने के कारण (Threats To Natural Resources)

वैसे तो कोई भी सामग्री हो जब भी हम अनुचित रूप से प्रयोग करेंगे तो उसकी सामान्यतया ही गुणवत्ता में कमी आएगी पर फिर भी कुछ क्रियाकलाप ऐसे हैं जिनसे प्राकृतिक संसाधनों के निरंतर कम होने अथवा नष्ट होने का खतरा सदैव बना रहता है, वह है -

1. जल का अत्यधिक प्रयोग व दुरुपयोग,
2. लकड़ी का फर्नीचर, समाजवट तथा ईंधन के रूप में प्रयोग,
3. कृषि फसलों से बिना किसी योजना के उत्पादन,
4. बहते पानी से खेतों की उपजाऊ मिट्टी का बह जाना।

5. अधिक उपज के लिए रासायनिक खादों का उपयोग,
6. अनेक पशु-पक्षियों और जीवों का शिकारियों द्वारा शिकार।

हम जब तक प्राकृतिक संसाधनों का उचित, उपयुक्त तथा बुद्धिमतापूर्ण ढंग से उपयोग नहीं करेंगे, तब तक संसाधनों की कमी की आशंका बनी ही रहेगी। कम से-कम उन संसाधनों पर तो विशेष ध्यान देना आवश्यक है और जिनका समाप्त होना सर्वथा सत्य है।

प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कैसे करें?

इतनी चर्चा के बाद मूल प्रश्न यही जाता है कि आखिर इतने बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों का सही उपयोग कैसे करें? अतः यह स्पष्ट है कि प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण और उपयोग में कहीं विवाद नहीं है। अंतर केवल इतना है कि हम केवल उतना ही प्रकृति से लें, जितना आवश्यक है!

प्राकृतिक संसाधनों का बुद्धिमतापूर्ण एवं आवश्यकतानुसार उपयोग ही हमारी कार्यशैली होनी चाहिए। प्राकृतिक संसाधनों के उचित उपयोग के कुछ मूल सिद्धांत निम्न प्रकार प्रस्तुत हैं-

1. प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग पर्यावरणीय स्थितियों को ध्यान में रखकर किया जा अर्थात् यह ध्यान रखा जाए कि इस उपयोग से पर्यावरण विकृत अथवा दूषित न हो।

2. प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग से दूसरों को हानि न पहुंचे।

3. पुनर्जीवित होने वाले संसाधनों का इस प्रकार उपयोग हो, जिससे उनके पुनः उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहे।

4. पुनर्जीवित नहीं होने वाले प्राकृतिक संसाधनों का कम (Non-renewable) बुद्धिमत्ता-पूर्ण और आवश्यकतानुसार ही उपयोग किया जाए, जिससे वह आगे काफी समय तक रह सके।

∴ प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण के संदर्भ में यह बात पूरी तरह समझनी है कि मूल तत्वों को नष्ट कर पृथ्वी पर रहना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव है और हमें केवल अपने लिए ही नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ियों के लिए भी सोचना है।

यह हमारे बच्चों की धरोहर है, जिसे हमें संरक्षण के लिए सौंपा है ताकि हम उन्हें इसे ठीक-ठाक सौंप सकें।

Unit = 1st

CHAPTER - 4
(ECOSYSTEM)

UNIT = 1st

पारिस्थितिक तन्त्र की अवधारणा पृथ्वी की जीवनतता प्रदान करती है। इस अवधारणा के अनुसार किसी भौगोलिक इकाई क्षेत्र में समस्त जीव और उनके भौतिक पर्यावरण के मध्य आपस में अन्तर्क्रियात्मक संबंध होते हैं। ये सभी किसी अपनी-अपनी सीमा में निरंतर क्रियाशील होकर सूत्रबद्ध रूप से संतुलित स्थिति बनाये रखते हैं। इस प्रक्रिया में जैव-अजैव तत्व, वनस्पति, जीव-जन्तु एवं भौतिक परिवेश, किसी क्षेत्र को एक प्रयोगशाला के रूप में प्रयोग करते हैं। सौर ऊर्जा, मृदा एवं जल के उपयोग से जैव तत्वों का उत्पादन एवं विकास एक चक्रीय रूप से चलता रहता है। इसी प्रक्रिया के कारण पारितन्त्र में उत्पादन और उपयोग के बीच संतुलन बना रहता है।

अतः तंत्र की संरचना, कार्य प्रणाली एवं गतिशीलता आधारभूत पक्ष हैं जो एक जटिल, स्वाभाविक एवं नियन्त्रित रूप से किसी भौतिक यन्त्र के समान कार्य करते हैं। इस प्रकार में जैव एवं अजैव संघटकों के मध्य पदार्थ और ऊर्जा के आदान-प्रदान के तन्त्र या व्यवस्था को ही पारिस्थितिक तन्त्र कहा जाता है।

∴ पारिस्थितिक तन्त्र का आशय

पारिस्थितिक तन्त्र या पारितन्त्र एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। जर्मनी भाषा में इसे ही इकोसिस्टम (Ecosystem) शब्द के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इस शब्द की विस्तृत व्याख्या सर्वप्रथम 1935 में जर्मन वनस्पतिशास्त्र ए. जी. टांसले ने की थी। टांसले के अनुसार, "पारिस्थितिक तन्त्र भौतिक तन्त्रों का एक विशिष्ट प्रकार है और इसकी संरचना जैविक तथा अजैविक घटकों से होती है। यह अपेक्षाकृत स्थिर समस्थिति में होता है। यह खुला तन्त्र है तथा विभिन्न आकार एवं प्रकार का होता है।

∴ पारिस्थितिक तन्त्र की विशेषताएं

पारिस्थितिक तन्त्र की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं

1. पारिस्थितिक तन्त्र सभी प्राणियों एवं उसके परिवेश का समूह योग होता है।
2. पारिस्थितिक तन्त्र की संरचना जैविक, अजैविक तथा ऊर्जा घटकों द्वारा होती है।
3. पारिस्थितिक तन्त्र का एक स्थानिक इकाई होती है।
4. इनका आयाम कालिक भी होता है।
5. इसके घटकों में अन्तर्क्रिया होती है तथा विभिन्न जीवों में पारस्परिक संबंध होता है।
6. पारिस्थितिक तन्त्र खुला तन्त्र होता है, जिसमें ऊर्जा तथा पदार्थों का स्थल निवेश या आगत तथा निर्गम या निर्गत होता रहता है

7. इसके नियन्त्रक कारकों में अव्यवस्था नहीं होती है।
8. यह विभिन्न प्रकार की ऊर्जा संचालित होता है, परन्तु इसमें सौर्यिक ऊर्जा सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है।
9. पारिस्थितिक तन्त्र का एक साफ और एक आकार होता है।
10. पारिस्थितिक तन्त्र से प्राकृतिक संसाधन मिलते है। यह स्वनिर्मित तथा स्व-नियंत्रित होता है।

पारिस्थितिक तन्त्र के प्रकार

पारिस्थितिक तन्त्र में प्रकृति और जीव मुख्य तत्व हैं। जीवों में मनुष्य ने तकनीकी विकास से पारिस्थितिक तन्त्र की कार्यकुशलता को जहां एक ओर बढ़ाया है, तो दूसरी ओर उसे घटाया भी है। इसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

A. प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्र : इसका समस्त संचालन प्रकृति से होता है और जैविक घटकों का उद्भव, विकास, विनाश, स्थानीय या क्षेत्रीय आधार पर प्राकृतिक पर्यावरण के विशेषताओं के तत्वों से नियंत्रित होता है। पर्यावरणीय आधार पर इसे निम्नलिखित उप-विभागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. स्थलीय या पार्थिव पारिस्थितिक तन्त्र : स्थल पर पाये जाने वाले पारिस्थितिक तन्त्र जैसे - पर्वत, पठार, वन क्षेत्र, घास के मैदान, मरुस्थल आदि

2. जलीय पारिस्थितिक तन्त्र :- जल में पाये जाने वाले पारिस्थितिक तन्त्र जैसे- नदी, तालाब, समुद्र आदि इसमें सम्मिलित है।

3. कृतिम या मानव निर्मित पारिस्थितिक तन्त्र :- समस्त जैव जगत में मनुष्य सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी है, इसलिए उच्च तकनीकी एवं नवीन अनुसंधान कर वह प्राकृतिक साधनों का दोहन करता है। वह ऊर्जा और उष्मा पाने के लिए वन काटता है। मिट्टी में रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करता है। वृहद यन्त्रों के उपयोग से कृषि, उद्योग, खनिज, परिवहन व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्रों में उसने इतना परिवर्तन कर दिया है कि कृतिम पारिस्थितिक का निर्माण हो गया है। अतः आर्थिक विकास के आधार पर इसे पाच उप-विभागों में विभाजित किया जाता है -

(i) जनजातीय पारिस्थितिक तन्त्र
(ii) उपकृषित पारिस्थितिक तन्त्र
(iii) उच्चतम तकनीकी युक्त कृषि पारिस्थितिक तन्त्र
(iv) वाणिज्यिक एवं व्यापारिक पारिस्थितिक तन्त्र
(v) औद्योगिक एवं नगरीय पारिस्थितिक तन्त्र

पारिस्थितिक तन्त्र की संरचना

प्रत्येक पारिस्थितिक तन्त्र चाहे वह सूक्ष्म हो या विशाल, इसकी मूल संरचना का निर्माण दो प्रकार के घटकों से होता है। जैविक घटक या अजैविक घटक दो वर्गों में विभाजित किया गया है।

1. अजैविक घटक ⇒ पारिस्थितिक तन्त्र में पाये जाने वाले समस्त निर्जीव पदार्थ उनके अजैविक घटक कहलाते हैं। पारिस्थितिक तन्त्र में अजैविक पदार्थ निरंतर जैविक घटकों में तथा फिर अजैविक घटकों में परिवर्तित होते रहते हैं। इस प्रकार निर्जीव वातावरण के तत्व जैविक घटकों को नियंत्रित करते हैं।

(i) उकार्बनिक पदार्थ ⇒ ये स्वपोषी घटकों जैसे हरे पौधों के पोषक तत्व हैं, जिन्हें वह वातावरण से प्राप्त करते हैं। इनमें जल विभिन्न खनिज - कैल्शियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम, फास्फेट, उरकार्बनिक जैसे - कार्बन डाइऑक्साइड, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन आदि सम्मिलित हैं।

(ii) कार्बनिक पदार्थ ⇒ इनके अन्तर्गत मृत पादपों एवं जंतुओं से प्राप्त प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, रबर इत्यादि शामिल हैं। कवकों एवं जीवाणुओं की क्रिया से ये कार्बनिक पदार्थ अकार्बनिक पदार्थ में बदल जाते हैं तथा हरे पौधे पुनः इनका प्रयोग कर लेते हैं।

Page :

Date :

पारिस्थितिक तन्त्र के घटक

- अजैविक घटक
  - अकार्बनिक पदार्थ (जल, खनिज, लवण)
  - कार्बनिक पदार्थ (प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट्स)
  - जलवायवीय घटक (वायु, ताप, वर्षा)
- जैविक घटक

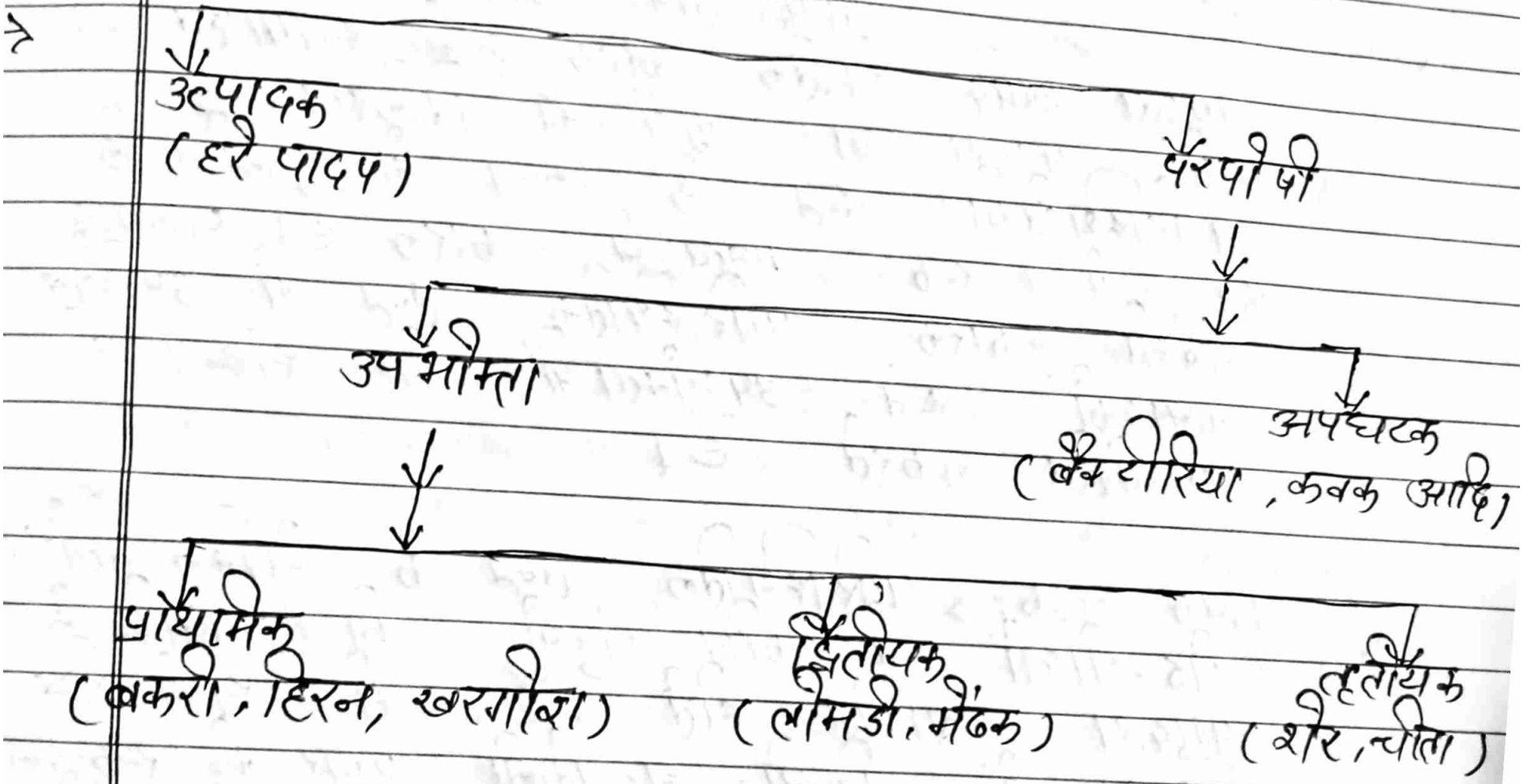

Page :

Date :

उत्पादक
(हरे पादप)
परपोषी
उपभोक्ता
अपघटक
(बैक्टीरिया, कवक आदि)
प्राथमिक
(बकरी, हिरन, खरगोश)
द्वितीयक
(लोमड़ी, मेंढक)
तृतीयक
(शेर, चीता)

(iii) जलवायवीय घटक: वायु, ताप, प्रकाश, वर्षा, पाला, कोहरा, आर्द्रता आदि भौतिक कारक इसमें सम्मिलित हैं। इनमें प्रकाश या सूर्य की विकिरण ऊर्जा पारिस्थितिकी तन्त्र के ऊर्जा के स्रोत के रूप में एक महत्वपूर्ण कारक है। जलवायु संबंधी कारक पारिस्थितिक तन्त्र में उपस्थित उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं की संख्या को निर्धारित करते हैं।

2. जैविक घटक → पारिस्थितिक तन्त्र के जैविक तत्वों में पेड़-पौधों व जीव-जंतुओं की आबादी के समुदाय शामिल होते हैं। ये सभी जीव आपस में किसी-न-किसी प्रकार से एक-दूसरे से संबंधित होते हैं। इन जीवों में परस्पर संबंधों का मुख्य आधार भोजन है।

(i) प्राथमिक उत्पादक या स्वपोषी उत्पादक ⇒ जैविक घटकों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वनस्पतियाँ हैं, क्योंकि पत्तियों में विद्यमान क्लोरोफिल, सूर्य के प्रकाश, जल और खनिज तत्वों से मिलकर स्वयं के लिए तथा समस्त जीवों के लिए भोजन बनाते हैं। ये समस्त जीव कार्बोहाइड्रेट्स का निर्माण करते हैं, जिसका उपयोग अन्य जीव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भोजन के रूप में करते हैं। इसलिए उत्पादक जीव कहलाते हैं।

Page :
Date :

(ii) उपभोक्ता :- वे जीव अपने भोजन के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राथमिक उत्पादों पर निर्भर करते हैं। अतः इन्हें परपोषी कहा जाता है। इन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

(a) प्राथमिक उपभोक्ता या प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता :- इसमें हरे पादपों अर्थात् प्राथमिक उत्पादकों से भोजन प्राप्त करने वाले समस्त शाकाहारी जीव आते हैं, जैसे- गाय, भैंस, बकरी, हिरण, खरगोश आदि। पौधों में संचित ऊर्जा के प्रथम उपभोक्ता होने के कारण इन्हें प्राथमिक उपभोक्ता कहते हैं।

(b) द्वितीयक उपभोक्ता या द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता :- इस श्रेणी में वे मांसाहारी जीव सम्मिलित हैं, जो प्राथमिक उपभोक्ता अर्थात् शाकाहारी जंतुओं को भोजन के रूप में प्रयुक्त करते हैं, जैसे - लोमड़ी, मेंढक, छिपकली आदि।

(c) तृतीयक उपभोक्ता या तृतीय श्रेणी के उपभोक्ता :- इसमें वे मांसाहारी जीव होते हैं, जो अन्य मांसाहारी जंतुओं या द्वितीयक उपभोक्ता से अपना भोजन प्राप्त करते हैं, जैसे - सांप, गिद्ध, बाज आदि। इसी श्रृंखला के अंत में वे बड़े मांसाहारी जानवर आते हैं जिन्हें दूसरे जानवर मारकर नहीं खाते। ये चरम सीमा के मांसाहारी हैं, जैसे- शेर, चीता इत्यादि।

9. अपघटक :- प्राथमिक एवं द्वितीयक जीवों के मरने पर निम्न कोटि के जीवधारी, जैसे- अनेक जीवाणु, कवक इत्यादि उनके मृत शरीर को अपघटित कर अपना भोजन प्राप्त करते हैं। ये मृत जीवों के कार्बनिक पदार्थों को सड़ा-गलाकर पुनः सरल अकार्बनिक पदार्थों में बदल देते हैं। अपघटन की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के जीवाणु तथा कवक स्वयं भोजन प्राप्त करते हैं। इन जीवों की कोशिकाओं में अनेक प्रकार के एन्जाइमों में अनेक समूह होते हैं, जिसके फलस्वरूप उत्पादों का कुछ भाग भोजन के रूप में जीवों में अवशोषित हो जाता है, शेष वातावरण में मिल जाता है।

पारिस्थितिक तन्त्र की कार्य प्रणाली

प्रत्येक पारिस्थितिक तन्त्र का निर्माण अजैविक घटकों तथा जैविक घटकों से मिलकर होता है। अतः किसी भी पारिस्थितिक तन्त्र में अजैविक तथा जैविक घटकों के बीच पारस्परिक अन्तर्क्रिया द्वारा सम्पूर्ण तन्त्र में ऊर्जा के संचरण की क्रमिक अवस्थाओं को पारिस्थितिक तन्त्र की कार्य प्रणाली कहा जा सकता है।

1. पारिस्थितिक तन्त्र का उत्पादन: किसी भी पारिस्थितिक तन्त्र की कार्य प्रणाली का प्रथम चरण तन्त्र के भिन्न घटकों के माध्यम से उत्पादन का कार्य है। हरे पादप वायु में कार्बन डाइऑक्साइड, मृदा, जल, तथा खनिज तत्व लेते हैं तथा सौर ऊर्जा की सहायता से प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा भोजन का निर्माण करते हैं। ऊर्जा का यह संचयन ही पारिस्थितिक तन्त्र का प्राथमिक उत्पादन कहलाता है। इस उत्पादन से ही ऊर्जा का स्थानान्तरण प्रारम्भ होता है।

2. पारिस्थितिक तन्त्र में उपभोग :- हरे पादपों द्वारा निर्मित कार्बनिक पदार्थों का कुछ भाग स्वयं पादपों की शारीरिक क्रियाओं के सम्पादन में खर्च हो जाता है। शेष संचित भोजन को शाकाहारी उपभोक्ताओं द्वारा उपभोग में लाया जाता है। इस प्रकार ऊर्जा का संचरण वनस्पतियों से शाकाहारी जंतुओं में हो जाता है। शाकाहारी जंतु द्वितीयक व तृतीयक श्रेणी के मांसाहारी जंतुओं के लिए भोजन होते हैं। अतः शाकाहारी जंतुओं से ऊर्जा का संचरण मांसाहारी जंतुओं में हो जाता है।

3. पारिस्थितिक तन्त्र में अपघटन : वनस्पति, जीव-जंतुओं और मनुष्यों द्वारा उत्सर्जित एवं मृत्यु के उपरांत कार्बनिक तत्वों का लघु जीवाणुओं द्वारा अपघटन होता है। ये असंख्य अति लघु जीवाणु अपना भोजन इससे ग्रहण करने के दौरान इसे अपघटित करते हैं, जिससे कालान्तर में ये कार्बनिक तत्व विघटित होकर

Page :
Date :

होकर अलग-2 हो जाते हैं। खनिज तत्वों जैसे फॉस्फोरस, नाइट्रोजन, लोहा आदि में परिवर्तित होकर मृदा तथा जल में पहुंच जाते हैं, जिसे बाद में वनस्पतियाँ अपने भोजना में प्रयोग करती हैं।

इस प्रकार सम्पूर्ण पारिस्थितिक तन्त्र में ऊर्जा तथा क्रमिक सन्चरण होता रहता है जिससे सम्पूर्ण तन्त्र की गतिशीलता बनी रहती है। भौतिक कारक जल, मृदा, तापमान, वायु, खनिज, तत्व आदि पारिस्थितिक तन्त्र की कार्य प्रणाली में उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। ये सभी पारिस्थितिक तन्त्र के उत्पादन, उपभोग एवं अपघटन की क्रिया को बढ़ा व घटा देते हैं।

CHAPTER - 3 मुख्य प्राकृतिक संसाधन तथा सम्बन्धित समस्याएं

UNIT = 2nd

1. प्राकृतिक संसाधन एवं संबंधित समस्याएं

प्रकृति के द्वारा हमें अनेक संसाधन प्रदान किये गये हैं, जिनके प्रति हमारी जिम्मेदारियाँ हैं। यह संसाधन व इनसे संबंधित समस्याएं निम्नलिखित हैं

1. वन संसाधन: वन पृथ्वी के प्रमुख प्राकृतिक संसाधन हैं। पृथ्वी पर उपस्थित हरियाली की यह चादर न सिर्फ लकड़ी, ईंधन व भोजन का स्रोत है, वरन् वन पृथ्वी की स्वस्थ व स्वच्छ पर्यावरण की नींव भी है। पर्यावरण की गुणवत्ता बढ़ाने के साथ-साथ वन प्राण वायु का भी मुख्य स्रोत है। वनों से हमें लकड़ी, ईंधन, भोजन, रेशे, तेल, रबड़, बांस, चारा तथा अन्य औषधियाँ आदि प्राप्त होती हैं, जिनका राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में बहुत बड़ा योगदान है। वनों से हमें प्रतिवर्ष लगभग अरब डॉलर मूल्य के उत्पादों की प्राप्ति भी 30 होती है। वनों से प्राप्त लकड़ी का लगभग ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है 50% व लगभग भाग लकड़ी इमारती लकड़ी के रूप 1/3 में प्रयोग की जाती है। भाग लुगदी में परिवर्तित करके 1/6 कागज बनाने में प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा वनों का उपयोग खनन, कृषि, चारागाह, मनोरंजन व बांध हेतु भी होता है। इसे हरा सोना (Green Gold) कहा जाता है।

वनों का उपयोग : वनों के उपयोग को दो प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है, जोकि निम्नलिखित है-

प्रथम वर्गीकरण

आर्थिक उपयोग — पर्यावरणीय उपयोग

द्वितीय वर्गीकरण

वाणिज्यिक उपयोग — पारितन्त्रीय उपयोग

- वन के कटाव के कारण :-

प्रकृति में वन के कटाव को कई कारणों से किया जाता है। यद्यपि वन का कटाव सदैव प्राकृतिक कारणों से होता है, परन्तु अब यहां मानवीय क्रियाओं की गतिशीलता तीव्र व लम्बी होती जा रही है। अतः स्थानीय व विश्व स्तर पर वन कटाव के मुख्य कारण निम्नलिखित होते हैं -

1. झूम कृषि :- जनसंख्या वृद्धि के साथ ईंधन की मांग बढ़ी है। स्वतन्त्रता के बाद भारत में ईंधन की मांग 65 मिलियन टन से बढ़कर वर्ष 2001 तक 300-500 मिलियन टन हो गई, जिसका सीधा प्रभाव वनों पर पड़ता है।

2. उद्योगों के लिए कच्चा माल: लकड़ी के डिब्बे, फर्नीचर, रेल की सीटें, प्लाईवुड व कागज की बढ़ती मांग के कारण वनों पर दबाव और भी बढ़ा है।

3. विकास परियोजनाएँ :→ नदी घाटी परियोजनाओं, बांधों, सड़कों व खनन के कारण भी वनों की बड़े पैमाने पर कटाई कटाई हुई है।

4. भोजन की बढ़ती मांग → कृषि के लिए भूमि की बढ़ती मांग ने वनों की कटाई को और भी तेज किया है।

5. अत्यधिक चराई: वनों को चारागाह के रूप में प्रयोग किया गया है। अत्यधिक चराई और बीजों के कुचले जाने से भी वनों में कमी आई है।

6. कृषि क्षेत्र में वृद्धि: आबादी बढ़ी, भोजन के लिए अन्न की अधिक उपज आवश्यक थी, वन काटकर खेत बना दिये गए। पानी की कमी की पूर्ति के लिए बांध बनाये गए, अनेक जंगल समाप्त कर दिये गए। परिणाम पर अधिक ध्यान ही नहीं दिया गया, भविष्य की चिंता किसे थी?

7. भूमिगत जल में निरंतर कमी: पानी के अन्धाधुन्ध उपयोग और दुरुपयोग से भी वृक्षों पर संकट आया। सतही जल के अतिरिक्त भूमिगत पानी के उपयोग से भूमिगत जल की गहराई दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई और वृक्षों की जड़ को पानी की कमी ने हिला दिया। बड़े-2 वृक्ष सूख गए, नष्ट हो गए और इसका सीधा असर वन क्षेत्रों पर पड़ा। जहां भी प्रकृति से छेड़छाड़ की गई, उनका प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष प्रभाव वनों पर पड़ा।

∴ वनों का महत्व और उनके उपयोग

(i) महत्व: विज्ञान ने यद्यपि पिछले कई सौ वर्षों में इतनी प्रगति कर ली है कि अब दैनिक उपयोग में आने वाली वस्तुओं अथवा अनेक प्रकार के आवश्यक और सुख-सुविधा के साधनों में वैकल्पिक पदार्थों का उपयोग कर लकड़ी के इस्तेमाल को कम कर दिया है; लेकिन फिर भी लकड़ी की खपत में कोई कमी नहीं है। कारण प्रथम तो जिन वस्तुओं को लकड़ी से बनाने में पहले भी प्राथमिकता दी जाती थी वहां बहुत अंतर नहीं आया है, भारत में तो लकड़ी का बहुत अधिक उपयोग शवदाह के लिए होता है।

वनों का प्रयोग केवल लकड़ी को ईंधन या कच्चे माल के रूप में प्रयोग करने तक सीमित नहीं है, बल्कि इसके अनेक पर्यावरणीय एवं भौगोलिक महत्व है।

1. ये पानी और मिट्टी जैसे महत्वपूर्ण संसाधनों की सुरक्षा और संरक्षा करते हैं। भूमि क्षरण रोकते हैं, भू-सतही जल को रोककर उन्हें स्वच्छ कर भूमिगत जल में भेजते हैं तथा जमीन की नमी को बनाये रखते हैं।
2. ये नदियों के प्रवाह को नियमित करते हैं, उनके प्रदूषण को नियंत्रित करते हैं, मिट्टी को बहकर जाने से रोकते हैं, बाढ़ रोकते हैं या कम करते हैं।
3. वन आच्छादित क्षेत्र वायुमण्डल की आर्द्रता बनाये रखते हैं, जिससे अधिक वर्षा की सम्भावना रहती है।
4. वनों से औषधियाँ प्राप्त होती हैं, जिनसे अनेक असाध्य रोगों का उपचार सम्भव है।
5. मनोरंजन स्थल के रूप में विकसित कर इन्हें आय का साधन बनाया जा सकता है।
6. जल-चक्र तथा वायु-चक्र में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

∴ 'वन उत्पाद' ⇒

वन उत्पादों की विधिवत जानकारी सम्भवतः 1965 से आंकी जाती है, जब देश के वनों का विश्लेषण और सर्वेक्षण संयुक्त राष्ट्र की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था FAO के साथ एक प्रोजेक्ट के रूप

में प्रारम्भ हुआ। बाद में 1981 में संस्था की Forest Survey of India अन्तर्राष्ट्रीय के तत्वाधान में विस्तृत जानकारी एकत्र की जाने लगी। वर्तमान में इसी संस्था के अन्तर्गत वनों के बारे में विभिन्न प्रकार के पेड़ प्रति हेक्टेयर (1) पेड़ों की संख्या प्रति (2) हेक्टेयर वृक्षों की जातियाँ और (3) प्रति हेक्टेयर मूल्यवान वृक्षों की उपलब्धि (4) आदि का भी पूरा विवरण रखा जाने लगा है।

पर्यावरण के संरक्षण और सुरक्षा को मोटे तौर से दृष्टिगत रखते हुए अब वनों के उत्पादों को दो श्रेणियों में रखा गया है -

1. लकड़ी (Wood) और
2. लकड़ी रहित उत्पाद (Non-Wood Products)

∴ वन संरक्षण:
वनों के विनाश से केवल विश्व के वर्षा चक्र में गड़बड़ी पैदा होने का भय ही नहीं होता, बल्कि इससे भी गंभीर खतरा धरती के आंतरिक वायुमण्डल की नाजुक रासायनिक के टूटने का है। वन विनाश रोकने के लिए विश्व संस्थान ने संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम और विश्व बैंक के साथ मिलकर 800 करोड़ की एक पंचवर्षीय योजना बनाई है। इस योजना का उद्देश्य (i) ईंधन की उपलब्धि

(ii) कृषि वानिकी को प्रोत्साहन, (iii) जलग्रहण का नवीनीकरण, (iv) उष्ण कटिबंधीय वन प्रणाली का संरक्षण (v) अनुसंधान प्रशिक्षण तथा प्रसार के लिए (vi) संस्थाओं को मजबूत बनाना है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा नियुक्त 'विकास और पर्यावरण' आयोग ने स्वीकार किया है कि अमीर देशों की जीवन प्रणाली और विकास की कल्पना के रहते हुए पर्यावरण की रक्षा नहीं हो सकती।

∴ वनों के संरक्षण हेतु उपाय

1. वन संरक्षण हेतु अधिनियम बनाना :- वनों की सुरक्षा हेतु विश्व के सभी देशों में अधिनियम बनाकर वृक्षों को काटे जाने पर पूर्ण पाबन्दी लगा देनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति इसकी अवहेलना करता है तो उसे कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए।

2. झूमिंग कृषि प्रणाली पर रोक लगाना :- विरल जनसंख्या वाले क्षेत्रों में इस प्रकार की कृषि का प्रचलन पाया जाता है। अतः इस कृषि प्रणाली पर प्रभावी रोक लगाकर लोगों को स्थायी कृषि के लिए सरकार द्वारा प्रोत्साहित करना चाहिए। इससे वनोन्मूलन को रोका जा सकता है।

3. वनों की आग से सुरक्षा करना :- वनों में आग लगने से एक बड़े क्षेत्र के वनों का पूर्णतया समाप्त हो जाना एक साधारण घटना है। अधिकांशतः ग्रीष्म ऋतु में

उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबंधीय वनों में आपसी रगड़ से आग लग जाती है जोकि सम्पूर्ण वन क्षेत्र को भस्मसात कर देती है। इसके बचाव के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और अनेक पश्चिमी यूरोपीयन देशों में वनों के मध्य स्थान पर ऊँचे-नीचे निरीक्षण गृह बनाये जाते हैं तथा समय-समय पर वायुयानों द्वारा आग पर निगरानी रखी जाती है।

4. वृक्षों का न्यूनतम उपयोग करना :- औद्योगिक इकाइयों में प्रयुक्त की जाने वाली लकड़ी के उपयोग में कम से कम बर्बादी होनी चाहिए। इसके साथ-साथ कागज उद्योग में काम आने वाली लकड़ी के स्थान पर व्यर्थ कागज तथा चीथड़ों का उपयोग किया जाना चाहिए। वनों की विवेकपूर्ण कटाई द्वारा प्राप्त लकड़ी के अधिकतम उपयोग किये जाने चाहिए। वनों की विवेकपूर्ण कटाई द्वारा प्राप्त लकड़ी के अधिकतम उपयोग में इस प्रकार की वैज्ञानिक विधियों को प्रयुक्त किया जाना चाहिए, जिसमें वनों से प्राप्त लकड़ी न्यूनतम बर्बादी हो। अतः वृक्षों के बहुमुखी उपयोग पर बल दिया जाना चाहिए, जैसे - हेमलॉक नामक वृक्ष की कटाई प्रायः लकड़ी के लिए की जाती है जबकि इसकी छाल का उपयोग टैनिन के उत्पादन के लिए भी किया जा सकता है।

CHAPTER = 5 जैव - विविधता एवं संरक्षण

UNIT = 3rd

पृथ्वी ग्रह पर अत्यधिक संख्या में जीवित जीव पाए जाते हैं। जैव- विविधता सभी जीवों व पारिस्थितिक तंत्रों की विभिन्नता एवं असमानता को कहा जाता है। मरुस्थलों से लेकर घने उष्ण कटिबंधीय वनों तक, हिम आच्छादित पर्वत शिखरों से लेकर महासागरों की गहराई तक विभिन्न आकार, प्रकार, रंग एवं रूपों में प्राणी जगत विद्यमान है या धरातलीय महासागरीय एवं अन्य जलीय पारिस्थितिक तंत्रों में उपस्थित अथवा उससे सम्बंधित तंत्रों में पाए जाने वाले जीवों के बीच विभिन्नता ही जैव- विविधता है।

जैव- विविधता के स्तर

जैव- विविधता के मुख्य रूप से तीन स्तर हैं:

1. आनुवंशिक - विविधता
2. प्रजाति - विविधता
3. पारिस्थितिक - विविधता

1. आनुवंशिक - विविधता: यह जैव- विविधता का मुख्य स्रोत है। जीवों में पाई जाने वाली 'जीन' विभिन्न प्रकार से मिलकर जीवों में विविधता लाने के लिए उत्तरदायी है। 'जीन' एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक विभिन्न लक्षणों को ले जाने वाली मूल इकाई है। जब एक ही प्रजाति के जीन विभिन्न प्रकार से मिलकर जीवों में अंतर पैदा कर देते हैं तो इसे आनुवंशिक - विविधता कहते हैं!

उदाहरण के लिए, चावल की किस्में एक प्रजाति

(आरीइजा सैटाइवा) से बनी है। परन्तु आनुवंशिक विविधता के कारण इनका रंग, आकार एवं पोषक तत्व विभिन्न प्रकार के हैं।

२. प्रजाति - विविधता : यह किसी समुदाय अथवा जनसंख्या में पाए जाने वाले जीवों के बीच की विविधता है। यह किसी समुदाय में जीवों की समृद्धता को दर्शाती है।

प्रजाति - विविधता को मापने के दो मापक हैं :
(i) शैनन - वीनर इन्डैक्स और
(ii) सिम्पसन इन्डैक्स।

1992 में विलसन द्वारा दिए गए आंकड़ों के अनुसार प्रजातियों की कुल संख्या 1 करोड़ से 5 करोड़ के बीच है।

3. पारिस्थितिक - विविधता : यह पारिस्थितिकीय जटिलता जैसे- आवास, खाद्य स्तर, खाद्य जाल, पदार्थ चक्रण आदि के बीच पाई जाने वाली विविधता है। पारिस्थितिक तंत्र भौतिक घटकों जैसे- तापमान, आर्द्रता, ऊंचाई, वर्षण आदि के साथ भी विभिन्नता दर्शाता है। अतः पारिस्थितिक तंत्रों के इन घटकों के बीच भी असमानता है। विभिन्न प्रकार के जंगलों में जहां मुख्यतः पेड़ों की प्रमुखता है, वहां भी अलग-2 क्षेत्रों में विविधता देखने को मिलती है।

जैव- विविधता का महत्व :
वाणिज्यिक उपयोग, पारिस्थितिक सेवाओं, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से जैव - विविधता का विशेष महत्व है। छः बिंदुओं से जैव - विविधता के महत्व का वर्गीकरण किया है जो निम्नलिखित हैं :

1. उपभोगी मूल्य: सीधे उपभोग से संबंधित मूल्य वे हैं जहां जैव - विविधता के उत्पादन को बाजार में से बिना सीधे ही वहां के लोगों द्वारा उपभोग किया जाता है। उदाहरण - भोजन, ईंधन की लकड़ी।

∴ भोजन ⇒ मनुष्यों द्वारा अनेक पौधों का उपयोग भोजन के तौर पर किया जाता है। अब तक लगभग 80,000 प्रजातियों का भोजन संबंधी महत्व पहचाना जा चुका है। अनेक जीव भी मनुष्य के लिए भोजन का स्रोत है।

∴ ईंधन ⇒ मनुष्य वर्षों से ईंधन के लिए वनों पर आश्रित है। जंगल से प्राप्त होने वाली ईंधन की लकड़ी जैव - विविधता के उपयोगी मूल्य का उदाहरण है।

2. उत्पाद संबंधी मूल्य: ये वाणिज्यिक दृष्टि से उपलब्ध वस्तुएं हैं जिन्हें बाजार में बेचा जा सकता है। जैसे - वैज्ञानिक की खोज हेतु 'जीन' का व्यापार, जानवरों की खाल, चमड़ा, रेशम, ऊन आदि शामिल हैं। कई उद्योग जैसे - कागज, रेशम वनों पर आश्रित हैं।

3. सामाजिक मूल्य: ये जैव- विविधता के वे मूल्य हैं जिनका सामाजिक, पारंपरिक, धार्मिक व मानसिक मूल्यों से संबंधित महत्व है। तुलसी, पीपल आदि की पूजा की जाती है। गाय, बैल, नाग, मोर, उल्लू को हमारे समाज में पवित्र माना गया है। इस प्रकार जैव - विविधता के साथ सामाजिक एवं धार्मिक महत्व भी जुड़े हुए हैं।

4. नैतिकता संबंधी मूल्य: हम इन्हें अस्तित्व संबंधी मूल्य भी कहते हैं। हर प्रकार के जीवन का संरक्षण आवश्यक है। ये मूल्य 'जीओ और जीने दो' की धारणा पर आधारित हैं। अगर हम मानव जाति का अस्तित्व रखना चाहते हैं तो हमें सभी जीवों का संरक्षण करना होगा।

5. सौन्दर्य संबंधी महत्व: जैव-विविधता से अपार सौन्दर्य जुड़ा हुआ है। कोई भी व्यक्ति जीवरहित बंजर धरती में रहने या घूमने की कल्पना नहीं कर सकता। लोग जीवों और प्रकृति के सौन्दर्य-प्रेम के कारण ही मीलों दूर पर्यटन की दृष्टि से घूमने जाते हैं, यह विविधता के सौन्दर्य का परिणाम ही तो है।

6. अप्रत्यक्ष मूल्य: आज भी प्रकृति के अनेक पहलू और उनकी उपयोगिता हमारी समझ से परे है। हो सकता है कि एड्स जैसी किसी बीमारी का उपचार प्रकृति के किसी कोने में छिपा हो। अतः अप्रत्यक्ष महत्व से अभिप्राय है जैव-विविधता के वे महत्व जिनसे हम अनभिज्ञ हैं और जिनकी खोज बाकी है।

7. पारिस्थितिक सेवाएं: आमतौर पर जैव-विविधता के पारिस्थितिकीय महत्व को नजरअंदाज कर दिया जाता है। पारिस्थितिक से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दे अपरदन का रोकथाम, बाढ़ों की रोकथाम, उर्वरता बनाए रखने में सहायक आदि है।

Date :

जैव - विविधता में ह्रास के कारण

प्रकृति के सैकड़ों वर्षों के प्रयास के उपरांत पृथ्वी पर जीवों का उद्भव एवं विकास हुआ। इन जीव-जंतुओं एवं पादपों के प्राकृतिक आवास विभिन्न पारिस्थितिक तंत्र रहे, जिनमें ये अबाध गति से जन्म लेते हैं और मरते हैं। वर्तमान में नियति अनवरत चलने वाले नियम में क्रियाशील मनुष्य ने रुकावटें पैदा कर दीं, जिससे पारिस्थितिक तंत्र में बाधा आ गई और उनमें जीवों की जातियां धीरे-2 लुप्त होने लगी। पृथ्वी पर जीव-विविधता में ह्रास के महत्वपूर्ण कारण निम्नलिखित हैं

1. प्राकृतिक आवासों का विनाश: वन एवं प्राकृतिक घास स्थल अनेक जीवों के प्राकृतिक आवास स्थल होते हैं मनुष्य ने भूमि प्राप्ति हेतु अथवा नगर निर्माण या औद्योगिक कच्चा माल प्राप्त करने के लिए जंगल काट डाले, जिससे जीवों के प्राकृतिक आवास समाप्त हो गए। इसके साथ ही भू-क्षरण बढ़ गया, मिट्टी की उत्पादकता घट गई, भूमिगत जल नीचे चला गया, वर्षा कम होने लगी, आंधियां तेज चलने लगी, मरुस्थलों का विस्तार होने लगा तापान्तर बढ़ने लगा, जिसके परिणामस्वरूप जीवों की अनेक जातियां लुप्त होने लगी।

2. वन्य जीवों का अवैध शिकार: मानव प्रारम्भ से ही अपने भोजन एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरंतर जंतुओं का शिकार करता आ रहा है, जिसके कारण मनुष्य को मांस, खाल, बाल, नाखून, दांत, सींग, औषधियाँ आदि प्राप्त होती हैं, जिनका उपयोग विभिन्न प्रकार के कष्ट, सौन्दर्य

प्रसाधन सामग्री एवं शोभाकारी सामग्री निर्मित करने के लिए किया जाता है। अतः इनका उपयोग विभिन्न उद्योग धंधों में भी किया जाता है, जिसके कारण जैव-विविधता में निरंतर कमी आती जा रही है।

3. मानव वन्य प्राणी द्वंद ⇒ मानव जनसंख्या में निरंतर वृद्धि के कारण भोजन, आवास तथा अन्य पदार्थों की मांग में वृद्धि हो रही है। नगरीय क्षेत्रों की वृद्धि, बांधों, भवनों, सड़कों के निर्माण, कृषि भूमि की प्राप्ति, खदानों की खुदाई के परिणामस्वरूप जीवों के प्राकृतिक आवास स्थलों पर आक्रमण होने लगा। आवास स्थल नष्ट होने तथा भोजन पानी की खोज में व्याकुल वन्य जीव खेतों एवं शहरों में प्रवेश करने पर मार दिये गए। वनों के विदोहन के कारण पादपों एवं वन्य प्राणियों की अनेक जातियां विलुप्त हो गई।

4. प्राकृतिक आपदाएं: जैव-विविधता को मानव प्रदत्त खतरों के अतिरिक्त कुछ प्राकृतिक खतरे भी हैं, यथा—

(i) बाढ़, सूखा एवं भूकम्प
(ii) क्रांतिक रूप से कम जनसंख्या जैसे - 100 से कम
(iii) रोग
(iv) पोलीनेटर्स की कमी
(v) एग्जोटिक जातियों का आगमन
(vi) वायु एवं जल-प्रदूषण

लुप्तप्राय: प्रजातियां :

भारत में औद्योगिकीकरण, नगरीकरण एवं वैज्ञानिक शोधों में वृद्धि होती जा रही है, जिसके कारण प्राकृतिक संसाधनों की मांग तथा उपयोग बढ़ रहा है। परिणामस्वरूप आज विविध प्रकार के पौधों एवं जीव-जंतुओं के अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है। यदि इनका संरक्षण नहीं किया गया तो ये पृथ्वी से विलुप्त हो जायेंगी।

भारत में विलुप्त हो रही अथवा संकटापन्न जंतु निम्नलिखित हैं:

1. सफेद शेर :→ बघेलखंड क्षेत्र में पाया जाने वाला सफेद शेर लगातार लुप्त होने की कगार पर है।
2. लाल पांडा → हिमालय क्षेत्र में पाया जाने वाले लाल पांडा की संख्या निरंतर कम होती जा रही है।
3. चित्तीदार उल्लू → पर्यावरणीय संकट के कारण उल्लू की यह प्रजाति भी लुप्त होने के कगार पर है
4. हनुमान लंगूर :→ हनुमान लंगूर जो सामान्य लंगूर की अपेक्षा आकार में बड़े होते होते है, दिनों-दिन संख्या में कम होते जा रहे हैं
5. हाथी :→ हाथी भी अधिक शिकार एवं भोजन की कमी के कारण से भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं।
6. घोंघा धावक :→ समुद्री प्रदूषण के कारण समुद्र में पाया जाने वाला घोंघा दुर्लभ प्रजाति के रूप में माना जाने लगा है।
7. बब्बर शेर :→ प्राकृतिक आवास एवं भोजन की कमी के कारण भारत में पाये जाने वाला बब्बर शेर भी विलुप्त होने के कगार पर है।

8. गिलहरी बंदर :⇒ पर्यावरणीय संकट के कारण बंदर की यह प्रजाति भी दुर्लभ होती जा रही है।
9. घड़ियाल :⇒ मगरमच्छ की घड़ियाल प्रजाति भी जल-प्रदूषण के कारण अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है।
10. मणिपुरी हिरन :⇒ मणिपुर के लोकटक झील के किनारे पाये जाने वाले मणिपुरी हिरन की संख्या भी शिकार एवं भोजन की कमी के कारण कम होती जा रही है।

∴ लुप्त अथवा संकटापन्न प्रजातियों का वर्गीकरण

1. विलुप्त :⇒ वे पादप प्रजातियां जो कि लुप्तता के कगार पर हों, लेकिन विपरीत पारिस्थितिक परिस्थितियां बन जाए तो उनके लुप्त होने का खतरा बढ़ जाता है।
2. लुप्तप्राय: वे पादप प्रजातियां जो कि लुप्तता के कगार पर हों, लेकिन विपरीत पारिस्थितिक परिस्थितियां बन जाए तो उनके लुप्त होने का खतरा बढ़ जाता है।
3. दुर्लभ :⇒ वे पादप प्रजातियां जो कि संसार में काफी कम संख्या में पाई जाती है, दुर्लभ प्रजातियाँ कहलाती है।
4. अपर्याप्त जानकारी :⇒ वे पादप प्रजातियां जिनके संबंध में सही जानकारी प्राप्त नहीं होती, लेकिन धीरे-धीरे से लुप्तप्राय: स्थिति में आ जाती है।
5. संकट से बाहर :⇒ वे सभी पादप प्रजातियां जो कि संरक्षण के बाद अपने पूर्व के वास स्थान पर स्थापित हो जाती है, इस वर्ग के अंतर्गत आती है।

Page :
Date :

∴ विभिन्न प्रजातियों की विलुप्तता के कारण:

(अ) प्राकृतिक कारण
1. जनसंख्या का कम होना,
2. वायु, जल एवं मृदा प्रदूषण,
3. बाढ़, सूखा एवं भूकम्प का होना,
4. संक्रामक रोगों में वृद्धि,
5. विदेशी जातियों का आगमन।

(ब) कृत्रिम कारण
1. जैवीय कारकों के कारण।
2. रोगजनकों के द्वारा भयंकर बीमारी या महामारी उत्पन्न के क
3. वातावरणीय कारकों द्वारा।

(स) पारिस्थितिक स्थानापन्न :⇒ जब किसी स्थान पर कोई न प्रजाति का समावेश किया जाता है तो वह प्रजाति उस स्थान के अधिकांश भाग को घेर लेती है।

∴ लुप्तप्राय: जातियों का संरक्षण:
पौधों के निरंतर उपयोग के कारण लुप्तप्राय: जातियों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है अत: इनके संरक्षण के लिए हमारे देश में एक अलग मंत्रालय गठित किया गया है, 'पर्यावरण एवं वानिकी मंत्रालय' कहते हैं।

लुप्तप्राय: जातियों को बचाने हेतु निम्नलिखित कदम उठाये जाने चाहिए;

1. प्राकृतिक आवासों एवं वन्य जीवन की सुरक्षा के लिए उनका नियंत्रित तथा सीमित उपयोग किया जाए।
2. मानव को वन्य जीवन के महत्व को अच्छी तरह समझना चाहिए जिससे सामाजिक जागरूकता उत्पन्न हो।
3. समाज को शिक्षित किया जाए जिससे वे वन्य जीवन के महत्व एवं उपयोगिता को समझ सकें।
4. वन्य जीवन की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए संवैधानिक प्रावधान किये जाएं।

∴ राष्ट्रीय प्रयास:
1. इंडियन बोर्ड फॉर वाइल्ड लाइफ, 1952
2. वाइल्ड लाइफ प्रोटेक्शन एक्ट, 1952
3. नेशनल वाइल्ड लाइफ एक्शन प्लान, 1982

∴ अंतर्राष्ट्रीय प्रयास: इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर वन्य जीवन सुरक्षा के लिए निम्न एजेंसियों का निर्माण किया गया है।

∴ वर्ल्ड हैल्थ ऑर्गेनाइजेशन: यह संस्था परम्परागत औषधीय पौधों के संरक्षण के लिए उत्तरदायी है।

(अ) प्रजाति की सूचना:
1. कानून स्वरूप
2. पारिस्थितिक आवास स्थल
3. भौगोलिक वितरण
4. व्याख्या एवं महत्व

(ब) जीवन समाप्त होने के प्रमाण:
1. स्टेटस परिवर्तन का ज्ञान।
2. खोज, अस्तित्व व ट्रेंड का मूल्यांकन
3. रोचिकर सहयोगी।

(स) सूचनाओं के स्त्रोत :
1. सूचना स्त्रोतों का ज्ञान।
2. सूचनाओं का सारांश।

(द) लेखन :
1. वास्तविक लेखक की जानकारी।
2. आखिरी रिपोर्ट का रख-रखाव या प्रबंधन।
3. संशोधन का रिकॉर्ड।

वन्य जीवन की सुरक्षा
वन्य जीव भी पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है, इसलिए उनकी सुरक्षा भी आवश्यक है।

1. नैतिक :⇒ प्रत्येक मनुष्य का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह वन्य जीव-जंतुओं को खत्म होने से बचाये और इन्हें अपनी प्राकृतिक धरोहर समझकर आने वाली पीढ़ी को सौंपे।

2. सौन्दर्य संबंधी : प्राकृतिक सुन्दरता हर व्यक्ति के मन को खुश करती है, इसलिए वन्य जीव-जंतुओं की हमें रक्षा करनी चाहिए।

3. वैज्ञानिक : वन्य जीवन बायोलॉजिकल विज्ञान के लिए साधन एवं सामान प्रदान करता है। हमें इसे नष्ट होने से बचाना है क्योंकि मनुष्य का जीवन प्रकृति पर निर्भर है।

∴ वन्य जीवन सुरक्षा के उपाय

भारत देश में आध्यात्मिक दृष्टि से और पारम्परिक तौर पर वन्य जीवन की सुरक्षा को महत्वपूर्ण माना जाता है।

1. सुरक्षा घरों से बाहर :⇒ जिन नस्लों के खत्म होने का भय हो, उन्हें उचित स्थानों पर रखना चाहिए।

2. सुरक्षा घरों के अन्दर :⇒ दुर्लभ नस्लों की सुरक्षा उनके प्राकृतिक स्थानों में की जाए। यह सुरक्षा अदृश्य रूप से दूसरे वन्य जीवों के स्थान पर अधिक प्रभाव डालती है।

∴ वन्य जीवन सुरक्षा हेतु सुझाव

1. अवैध शिकार पर प्रतिबंध लगाया जाए।
2. पर्यावरणीय शिक्षा सभी स्तर के व्यक्तियों को अवश्य दी जानी चाहिए।
3. राष्ट्रीय चिड़ियाघरों तथा अभयारण्यों की संख्या में वृद्धि होनी चाहिए।
4. राष्ट्रीय पार्क, अभयारण्यों एवं चिड़ियाघरों की सैर विद्यार्थियों को करानी चाहिए।
5. दुर्लभ एवं संकटग्रस्त जीवों की रक्षा के विशेष उपाय किये जाने चाहिए।
6. वन्य जीवों की सुरक्षा के लिए पर्यावरण प्रदूषण कम करने के प्रयास करने चाहिए।

पर्यावरण प्रदूषण

UNIT = 4th

→ जब वातावरण का अन्य घटक वायु, जल, भूमि, इत्यादि किन्हीं अन्य अनचाहे पदार्थों से मिलकर अपने भौतिक रासायनिक व जैविक गुणों में परिवर्तन ले आता है तो यह उपयोग के काम में नहीं रहते अथवा स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं तो यह प्रभाव एवं परिणाम प्रदूषण कहलाता है। प्रदूषण से मानव व अन्य जीवों के अस्तित्व को खतरा हो जाता है।

* पर्यावरण प्रदूषण :- पर्यावरण प्रदूषण जिसके तहत भूमि, जल व वायु में स्वास्थ्य के लिए लाभदायक तत्व होने के बजाय हानिकारक तत्व पाए जाते हैं जिससे मनुष्य व अन्य जीवों को खतरा व नुकसान हो, वह पर्यावरण प्रदूषण कहलाता है। पर्यावरण प्रदूषण के विभिन्न प्रकार हैं —

1. वायु प्रदूषण
2. जल प्रदूषण
3. मृदा प्रदूषण
4. सागरीय प्रदूषण
5. ध्वनि प्रदूषण
6. ताप प्रदूषण
7. नाभिकीय प्रदूषण आदि

* प्रदूषक :- प्रदूषक ऐसे तत्व हैं जो वातावरण में प्रदूषण पैदा करते हैं। प्रदूषक को हम वातावरण में उपस्थित हानिकारक तत्वों के नाम भी दे सकते हैं। मानवीय क्रिया के बाद प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की परिष्कृत सामग्री जैसे - कूड़ा-कचरा, रसायन, धुआं धूल गैस आदि। उत्पत्ति के स्त्रोत के आधार पर उत्पाद दो प्रकार हैं —

1. प्राकृतिक प्रदूषक :- ज्वालामुखी, राख, धूल, भूकंपीय घटनाओं के दौरान आने वाले धरातलीय परिवर्तन से उत्पन्न तत्व बाढ़ सूखा, मृदा अपरदन

इत्यादि तत्व प्रमुख है।
2. मानव निर्मित प्रदूषक :- 1. औद्योगिक स्त्रोत
2. जनसंख्या स्त्रोत
3. कृषि स्त्रोत 5. घरेलू मल
4. खनन स्त्रोत 6. वाहित मल
7. तेलीय स्त्रोत 8. तापीय स्त्रोत
9. परिवहन स्त्रोत

वायु प्रदूषण

→ यह वायुमंडल की वह स्थिति है जिसमें वायु में उपस्थित विशेष पदार्थों की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि इनका दुष्प्रभाव मनुष्य और पर्यावरण मंडल पर भी पड़ता है ये पदार्थ गैस धूल के कण, रेडियोधर्मी पदार्थ आदि हैं। गैसीय प्रदूषकों में सल्फर डाइऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, हाइड्रोजन इत्यादि है। धूल कण प्रदूषकों में धुंआ, धूल, भाप और परागकण आदि आते हैं।

प्रदूषकों की स्त्रोत →

1. प्राकृतिक स्त्रोत → वायु प्रदूषकों के प्राकृतिक स्त्रोत ज्वालामुखी का फटना, जंगलों की आग, समुद्री लवण, जैविक अपरदन, टरपीन जैसे रसायनों का ऑक्सीकरण, दल - दल) फलों का परागकण आदि है। पृथ्वी के गर्भ में उपस्थित रेडियोधर्मी पदार्थ वायुमंडल में रेडियोधर्मिता के लिए उत्तरदायी है।

2. मानव जनित स्त्रोत :- इनमें विद्युत ताप गृह, कारखाने, वाहन, पेट्रोलियम और कोयले का दहन कृषि आदि शामिल है। इनसे निकलने वाले धुएं में SO_2 व फ्लोराइडेशन प्रमुख है। कारखानों व वाहनों से निकलने वाला धुंआ वायु प्रदूषण का मुख्य स्त्रोत है।

Date :

* वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव :-

1. मनुष्य के स्वास्थय पर प्रभाव :- वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव से बचने के लिए श्वासनली में कई प्रक्रिया शामिल है। वायु प्रदूषकों के निरंतर संपर्क के सूक्ष्म बाहर निकल जाते है। ऐसी स्थिति में खांसी, दमा, कैंसर व अन्य श्वास संबंधी विकारों का जन्म होता है। इसके अलावा अन्य प्रदूषक जैसे बेंजीन, फार्मेलडीहाइड, पॉली क्लोरोनेटिड - बाइफिलाइल, भारी वस्तुएं डाइऑक्सीजन इत्यादि भी वायु में उपस्थित होते है जो कैंसर प्रजनन से संबंधित विकार और आनुवंशिक इकाइयों में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है।

2. वनस्पति पर प्रभाव :- वायु प्रदूषक तत्व पर स्थित छिद्र स्टोमेटा के जरिए अंदर तक चले जाते है और क्लोरोफिल को नष्ट कर देता है। फलस्वरुप प्रकाश संश्लेषण रुक जाता है। ये प्रदूषक पत्तों पर स्थित तनीय परत को भी नुकसान पहुंचाता है। इस प्रभाव के कारण समस्त वनस्पति भी नष्ट हो सकती है।

3. जलीय जीवों पर प्रभाव :- वायु प्रदूषकों के कारण कला के नमूनों और ऐतिहासिक स्मारकों का पीलापन और अपरदन की घटनाएं भी उत्तरदायी होता है।

4. पदार्थों पर प्रभाव :- धूल कणों के कारण कला के नमूनों और ऐतिहासिक स्मारकों का पीलापन और अपरदन की घटनाएं सामने आती है। सल्फेट कणों के कारण धातुओं का ऑक्सीकरण होता है, साथ ही कपड़ा, चमड़ा, कागज और पत्थर पर भी इनका दुष्प्रभाव पड़ता है।

वायु प्रदूषण नियंत्रण

1. कारखानों की स्थापना पर्यावरणीय प्रभाव के आकलन के प
2. कारखानों में कम सल्फर वाले उच्चकोटि के कोयले का प्रय
3. कोयले से सल्फर कम करने के लिए उसका जैव परि
4. प्रदूषण नियंत्रण उपकरणों का प्रयोग हो,
5. साइकिलों के प्रयोग पर बल दिया जाए।
6. गैर-परम्परागत ऊर्जा-स्रोतों का प्रयोग हो,
7. अधिकाधिक वृक्षारोपण हो।

ध्वनि प्रदूषण के स्रोत: ध्वनि प्रदूषण के स्रोत वाहन उद्योग, निर्माण कार्य, समारोह इत्यादि हैं। नागपुर में 105 डेसीबल, दिल्ली में 90 डेसीबल, न्यूयॉर्क में 88 डेसीबल, कोलकाता में 85 डेसीबल, मुम्बई में 82 डेसीबल ध्वनि स्तर दर्ज किया गया है।

ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव:

1. अधिक शोर में वार्तालाप में कठिनाई होती है।
2. अधिक शोर अस्थाई या स्थाई बहरेपन का कारण है।
3. अधिक शोर में सिर दर्द, तनाव, बेचैनी, रक्तचाप, मानसिक तनाव व उससे संबंधित व्याधियां उत्पन्न हो सकती हैं।

ध्वनि प्रदूषण की रोकथाम:

1. अधिक शोर करने वाले वाहनों और मशीनों का प्रयोग न हो।
2. अधिक शोर करने वाली मशीनों को बंद परिसर में रखा जाए ताकि शोर बाहर न आये।

Page :
Date :

3. मशीनों की समुचित मरम्मत व देखरेख की जाए। उनमें समय-समय पर तेल, ग्रीस, स्नेहक आदि डाले जाये।

4. ध्वनि प्रदूषण कम करने वाले रेशों की सीट, बोर्ड आदि का प्रयोग हो।

जल प्रदूषण के स्त्रोत: जल जीवन का आधार है। हमें पीने, भोजन बनाने, नहाने, कपड़े धोने व कारखानों हेतु जल की आवश्यकता है। इन क्रियाओं के लिए अधिकतर जल नदियां अथवा भू-जल स्त्रोतों से प्राप्त किया जाता है। अकेन्द्रित स्त्रोतों का निस्राव केन्द्रित नहीं है। खेतों से जल प्रवाह, नालों और नदियों का प्रदूषित जल व वायुमंडल से धूल का जमाव इत्यादि ऐसे स्त्रोत हैं।

भू-जल-प्रदूषण: कुल जल का 6.2% भाग भू-जल के रूप में है। यह सतही जल की अपेक्षा 30 गुना अधिक है। भू-जल सतही जल की अपेक्षा कम प्रदूषित होता है, क्योंकि यह जल मृदा से छनकर भू-जल तक पहुंचता है। भू-जल का फ्लोराइड, नाइट्रेट व आर्सेनिक से संदूषण स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा है।

सतही जल प्रदूषण

1. अवजल: नदियों व झीलों में अपजल लाने वाले गंदे नालों का मिलना।

2. कारखानों का अपजल: कारखानों से निकलने वाले रसायन, अम्ल, क्षार, फिनोल, अमोनिया, रेडियोधर्मी पदार्थ इत्यादि नदियों में डाल दिये जाते हैं

3. अपमार्जक: कपड़े व बर्तन धोने के लिए प्रयोग होने वाले उर्वरक और अन्य घातक रसायन जल प्रवाह के साथ नदियों में मिले जाते हैं।

4. उर्वरक व रसायन: कृषि में प्रयोग होने वाले उर्वरक और अन्य घातक रसायन जल प्रवाह के साथ नदियों में मिले जाते हैं

5. तेल: तेल के कुओं और टैंकरों से निकलने वाला तेल महासागरीय जल को प्रदूषित करता है।

जल प्रदूषण के प्रभाव: 1953 में जापान के मिनामाय शहर में प्रदूषित मछलियां खाने पर सैकड़ों लोगों को मौत का शिकार होना पड़ा। इस दुर्घटना से लगभग 2000 लोग प्रभावित हुए। लगभग 50 से ज्यादा लोगों की मृत्यु हो गई और लगभग 700 लोग स्थायी तौर से अपाहिज हो गए। 1956 में पता चला कि मिनामाटा त्रासदी के लिए जिम्मेदार रसायन मिथाइल युक्त पारा था। इससे यह तथ्य सामने आया कि जाने-अनजाने में नदियों में छोड़े जाने वाले अपशिष्ट पदार्थ मानव जीवन के लिए भारी खतरा उत्पन्न कर सकते हैं। जल प्रदूषण का दूसरा प्रमुख कारण है - कच्चा तेल। टैंकरों से लगातार रिसाव व दुर्घटनाग्रस्त टैंकरों के कारण समुद्र में कच्चा तेल फैल जाता है। इस तेल और कार्बनिक कचरे के कारण जलीय वातावरण में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।

भूजल में आर्सेनिक की उपस्थिति बांग्लादेश और पश्चिम बंगाल में विभिन्न रोगों का कारण है। भूजल में नाइट्रोजन की अधिकता से 'मेटहीमोग्लोबिनी-या' नामक बीमारी होती है। जल में फ्लोराइड की अधिकता के कारण 'फ्लोरोसिस' और दांतों व हड्डियों से संबंधित विकार सामने आए हैं;

जल प्रदूषण की रोकथाम -

कानून व नियमों के आधार पर जल प्रदूषक की उत्पत्ति के स्थान से ही आसानी से रोका जा सकता है। परंतु जहां प्रदूषकों की उत्पत्ति का स्थान निश्चित नहीं है, जल प्रदूषण को रोक पाना मुश्किल होता है।

1. उर्वरकों के स्थान पर नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने वाले पौधों का इस्तेमाल हो।
2. कीटनाशकों के न्यूनतम प्रयोग के लिए एकीकृत कीट प्रबंध की योजना अपनाई जाए।
3. जल प्रवाह के साथ मिट्टी की ऊपरी सतह का अपरदन रोका जाए।
4. वर्षा जल के साथ अवजल के बह जाने की रोकथाम हो।
5. वृहद्वारोपण से मिट्टी का कटाव कम होगा व अपवाह भी।

मृदा प्रदूषण

मृदा भूपर्पटी की ऊपरी सतह है जो चट्टानों के अपरदन से बनी है। मृदा में कार्बनिक पदार्थ की उपस्थिति जीवों के अस्तित्व के लिए आवश्यक है। विभिन्न प्रकार के घरेलू एवं औद्योगिक कचरे के पर्यावरण में मिलने मृदा प्रदूषण हुआ है। घरों से निकला कचरा, कागज, कारखानों का अवमल, प्लास्टिक, घातक रसायन इत्यादि मृदा का स्रोत है। रसायनिक निर्माण से जुड़ी औद्योगिक, इकाइयां, कागज मिल, कपड़ा उद्योग, चमड़ा उद्योग, लौह अयस्क कारखाने, तेल शोधन संयंत्र, कीटनाशक एवं उर्वरक निर्माण की इकाइयां इत्यादि भारी मात्रा में प्रदूषित जल एवं अवमल उत्पादित करती है।

मृदा प्रदूषण के प्रभाव:

अवजल या अवमल जो मृदा को प्रभावित करते हैं, अंततः मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं। विभिन्न प्रकार के रसायन जैसे अम्ल, क्षार, कीटनाशक, भारी, धातुएं इत्यादि मृदा की उर्वरता कम करते हैं और मृदा के गुणों में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। कुछ हानिकारक रसायन अन्य जीवों को प्रभावित करते हैं। रेडियोधर्मी पदार्थ भी भोजन के जरिए होता रहता है और इन्हें कमजोर बनाता है। मृदा में उपस्थित नाइट्रेट और फास्फेट जल में घुलकर सतही जल में यूट्रोफिकेशन की तपस्या को जन्म देते हैं अथवा भूजल को प्रदूषित करते हैं।

मृदा प्रदूषण का नियंत्रण :

1. कारखानों से निकलने वाले अवजल का उपचार हो।
2. अपवाह को रोका जाए।
3. अपशिष्ट पदार्थों को एकत्र करके निश्चित स्थान पर डाला जाए।
4. कूड़े कचरे से उपयोगी पुनर्निर्माण एवं पुनर्चक्रण हो।
5. कूड़े से बायोगैस बनाई जाए।
6. जानवरों के मल से बायोगैस बनाई जाए।

नाभिकीय आपदाएं

रेडियोधर्मी पदार्थ प्राकृतिक रूप से उपस्थित है। ये पदार्थ निरंतर रेडियोधर्मी खंडन द्वारा अस्थाई आइसोटोप बनाते है जो अत्यंत गतिशील एवं उच्च ऊर्जा विकिरण छोड़ते है। यह क्रिया स्थाई समावयव बनने तक चलती रहती है। ये समावयव अल्फा, बीटा तथा गामा विकिरण है।

रेडियोधर्मी के स्त्रोत

1. प्राकृतिक स्त्रोत: बाह्य ब्रह्माण्ड से आने वाली किरणें रेडॉन -222 मृदा, चट्टानें, हवा तथा जल रेडियोधर्मी के प्राकृतिक स्त्रोत है।
2. मानव जनित स्त्रोत: नाभिकीय ऊर्जा संयंत्र, नाभिकीय परीक्षण, नाभिकीय दुर्घटनाएं खतरे व प्रयोगशालाओं से निकला कचरा रेडियोधर्मिता के मानव जनित स्त्रोत है।
3. विकिरण के प्रभाव

(i) आनुवंशिक प्रभाव : ये विकिरण में आनुवंशिक परिवर्तन कर सकते है। फलस्वरूप DNA आनुवंशिक रोग एवं परिवर्तन हो सकते है।